

अफलातून और अन्य

बनाम

ले. राज्यपाल दिल्ली व अन्य

23 अगस्त, 1974

[मु.न्या, श्री ए. एन. रे; न्या. श्री के. के. मैथ्यू, न्या. श्री ए. अलगिरिस्वामी, न्या. श्री पी. के. गोस्वामी और न्या. श्री आर. एस. सरकारिया]

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, धारा 4, उपधारा (1) और (2) के अधीन कार्यवाही प्रारंभ करना, वैध अधिसूचना अनिवार्यतः- न्यायालय में जाने में विलंब - प्रभाव। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, धारा 23 और भारतीय संविधान, 1950, अनुच्छेद 19(1)(च) 31(2) और 31(5)-धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख को संपत्ति के मूल्य के संदर्भ में मुआवजा-मुआवजे की पर्याप्तता, चुनौती-चुनौती केवल प्रक्रियात्मक तर्कसंगतता के प्रश्न तक ही सीमित है।

दिल्ली विकास अधिनियम, धारा 12 और 15-दिल्ली का नियोजित विकास अधिनियम के अनुरूप होगा-केंद्र सरकार, यदि नियोजित विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने से रोक दी जाती है-याचिकाकर्ताओं की ओर से लापरवाही और मौन स्वीकृति-प्रभाव

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, धारा 3 (क) और भाग VII - दिल्ली के नियोजित विकास के लिए भूमि का अधिग्रहण - सहकारी आवास समितियों को अधिग्रहित संपत्ति के एक हिस्से को हस्तांतरण करना - अधिनियम के भाग VII के प्रावधान, क्या लागू होते हैं।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत 13 नवंबर 1959 को एक अधिसूचना जारी की गई थी, जिसमें कहा गया था कि सार्वजनिक उद्देश्य अर्थात् दिल्ली के नियोजित विकास के लिए 34,070 एकड़ भूमि की आवश्यकता है। 1959 और 1961 के बीच अधिनियम की धारा 5 के तहत लगभग छह हजार आपत्तियां दर्ज की गईं। आपत्तियों को खारिज कर दिया गया। 18 मार्च 1966 को क्षेत्र के एक हिस्से के संबंध में अधिनियम की धारा 6 के तहत घोषणा प्रकाशित की गई। इसलिए, 1970 में अधिनियम की धारा 9 (ठ) के तहत नोटिस जारी किए गए, जिसमें अपीलकर्ताओं को मुआवजे के आकलन पर अपनी आपत्तियां, यदि कोई हो, बताने की आवश्यकता थी। इसके बाद अपीलकर्ताओं ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अधिग्रहण की कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने उनकी दलीलों को नकार दिया और रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय में दायर रिट याचिकाओं और सिविल अपीलों में यह तर्क दिया गया था: (i) धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट सार्वजनिक उद्देश्य, अर्थात् दिल्ली का नियोजित विकास अस्पष्ट था क्योंकि अधिसूचना की तिथि पर न तो कोई मुख्य योजना और न ही कोई क्षेत्रीय योजना अस्तित्व में था और चूंकि अधिसूचना में निर्दिष्ट उद्देश्य अस्पष्ट था, अपीलकर्ता और याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 5 के तहत अपने अधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में असमर्थ थे; (ii) चूंकि अधिग्रहण की कार्यवाही को अंतिम रूप देने में अत्यधिक देरी हुई थी, इसलिए वे धारा 4 के तहत अधिसूचना की तिथि और संपत्ति पर कब्जा लेने की तिथि के बीच

संपत्ति के मूल्य में हुई वृद्धि के लाभ से वंचित रह गए। (iii) अधिनियम की धारा 23 के प्रावधान यह निर्धारित करते हैं कि मुआवज़ा धारा 4 के तहत अधिसूचना की तिथि को भूमि के बाजार मूल्य के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए, जो अनुच्छेद 19(1)(ख) के तहत अपीलकर्ताओं के संपत्ति रखने और निपटान के मौलिक अधिकार पर एक अनुचित प्रतिबंध था। (iv) चूंकि संपत्ति का अधिग्रहण दिल्ली के नियोजित विकास के उद्देश्य से किया गया था, इसलिए धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने के लिए सक्षम एकमात्र प्राधिकारी दिल्ली विकास अधिनियम की धारा 15 के तहत केंद्र सरकार थी और चूंकि कार्यवाही दिल्ली के मुख्य आयुक्त द्वारा शुरू की गई थी, इसलिए कार्यवाही शुरू से ही अवैध थी; और (v) अधिग्रहण किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं था, बल्कि कंपनियों के लिए था क्योंकि अधिग्रहित भूमि का बड़ा हिस्सा बिना किसी विकास के सहकारी आवास समितियों को आवंटित किया गया था, जो अधिनियम में "कंपनी" शब्द की परिभाषा के भीतर कंपनियां थीं और चूंकि अधिनियम के भाग VII के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए अधिग्रहण की कार्यवाही गलत थी।

विवाद का विरोध करते हुए और अपीलों और याचिकाओं को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित: (i) संपत्ति के अधिग्रहण के लिए कार्यवाही शुरू करने के लिए धा. 4 के तहत वैध अधिसूचना एक *अनिवार्य शर्त* है। अधिसूचना में उस विशेष सार्वजनिक उद्देश्य को निर्दिष्ट करना आवश्यक है जिसके लिए भूमि की आवश्यकता है या आवश्यकता होने की संभावना है, अन्यथा, धा. (4) की उप-धारा (2) में निर्दिष्ट मामलों को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है। [807सी]

मुंशी सिंह और अन्य बनाम भारत संघ, [1973] 1 एससीआर 973 (975 और 984) पर भरोसा किया गया।

अर्नोल्ड रोड्रिक्स और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, [1966] 3 एससीआर 885 का उल्लेख किया गया है।

विभिन्न व्यक्तियों के स्वामित्व वाले कई भूखंडों वाले भूमि के एक बड़े क्षेत्र के अधिग्रहण के मामले में, उद्देश्य का विनिर्देश केवल पूरे क्षेत्र के अधिग्रहण के संदर्भ में हो सकता है। छोटे से क्षेत्र के अधिग्रहण के मामले के विपरीत, उस विशेष उद्देश्य को निर्दिष्ट करना व्यावहारिक रूप से कठिन हो सकता है जिसके लिए क्षेत्र में शामिल भूमि की प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता है। [807छ]

अपीलकर्ताओं ने 1966 में धारा 6 के तहत घोषणा प्रकाशित होने के बाद भी मामले में कोई कदम नहीं उठाया। उन्होंने 1970 में ही अपनी रिट याचिकाओं के साथ उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जब उन्हें धारा 9 के तहत नोटिस जारी किए गए। इसके अलावा, अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क नहीं दिया कि चूंकि धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना में सार्वजनिक उद्देश्य के विवरण निर्दिष्ट नहीं किए गए थे, इसलिए वे इस बात से पूर्वाग्रहित थे कि वे धारा 5क के तहत अपने अधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग नहीं कर सकते थे। चूंकि यह दलील उच्च न्यायालय के समक्ष उनके द्वारा नहीं उठाई गई थी, इसलिए अपीलकर्ता इन अपीलों में इस दलील पर विचार किए जाने के हकदार नहीं हैं। तटस्थ रहना और सरकार को धारा 4 के तहत अधिसूचना और धारा 6 के तहत घोषणा के आधार पर अधिग्रहण की कार्यवाही पूरी करने की अनुमति देना वैध था और फिर अधिसूचना पर उन आधारों पर हमला करना

जो अधिसूचना प्रकाशित होने के समय रिट याचिकाकर्ताओं के पास उपलब्ध थे, विलंबकारी रणनीति पर जोर देना होगा। रिट याचिकाएं याचिकाकर्ताओं की ओर से लापरवाही और देरी के आधार पर खारिज किए जाने योग्य हैं। [808क-ख; घ और च-छ]।

तिलोक चंद मोती चंद और अन्य बनाम एच. बी. मुंशी और अन्य, [1969] 2 एससीआर 824 और *रवींद्रनाथ बोस और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य* [1970] 2 एससीआर 697 का उल्लेख किया गया।

(ii) संपत्ति में रुचि रखने वाले व्यक्तियों द्वारा धारा 5क के तहत लगभग 6,000 आपत्तियां दर्ज की गईं। अधिग्रहण कार्यवाही की वैधता को चुनौती देते हुए 1966 और 1967 में कई रिट याचिकाएं भी दायर की गईं। सरकार को मामले में आगे बढ़ने से पहले आपत्तियों और याचिकाओं के निपटारे का इंतजार करना पड़ा। उच्च न्यायालय का विचार था कि अधिग्रहण की कार्यवाही पूरी करने में सरकार की ओर से कोई अत्यधिक देरी नहीं हुई थी। उच्च न्यायालय का निष्कर्ष सही है। [809बी-सी]

(iii) भूमि अधिग्रहण अधिनियम संविधान-पूर्व अधिनियम है। इसलिए, इसके प्रावधानों को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे संविधान के अनुच्छेद 31 (2) की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हैं। अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं की शिकायत यह है कि उनकी संपत्तियां उन्हें धारा 4 के तहत अधिसूचना की तिथि पर भूमि के बाजार मूल्य के संदर्भ में गणना किए गए मुआवजे का भुगतान करके अधिग्रहित की गई थीं और इसलिए धारा 23 खराब है। यह मूल रूप से मुआवजे की पर्याप्तता को चुनौती देने के अलावा और कुछ नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 31(5) के कारण ऐसी चुनौती को रोका जाता है। [809एफ-जी]

हालाँकि संपत्ति अधिग्रहण के लिए कानून को अनुच्छेद 19 (5) की कसौटी पर खरा उतरना होगा, लेकिन कानून को चुनौती आमतौर पर प्रक्रियात्मक अनुचितता के सवाल तक सीमित होगी। [810बी]

आर. सी. कूपर बनाम भारत संघ [1970] 3 एस. सी. आर. 530, (577) पर भरोसा किया।

इसका अर्थ यह है कि यद्यपि अधिनियम की धारा 23 को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि यह अनुच्छेद 19 (1) (ख) के तहत संपत्ति रखने और उसका निपटान करने के नागरिक के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करती है, चुनौती व्यावहारिक रूप से प्रक्रियात्मक तर्कसंगतता के प्रश्न तक सीमित होगी। लेकिन धारा 23 प्रक्रिया से संबंधित नहीं है और इसलिए, किसी भी प्रक्रियात्मक अनुचितता से ग्रस्त नहीं हो सकती है। [310ई-एफ]

(iv) दिल्ली के नियोजित विकास का निर्णय सरकार द्वारा 1959 से पहले ही ले लिया गया था, अर्थात् दिल्ली विकास अधिनियम के लागू होने से भी पहले। यह सच है कि दिल्ली विकास अधिनियम के लागू होने के बाद उसके प्रावधानों के अनुसार ही दिल्ली का कोई नियोजित विकास हो सकता था, लेकिन मुख्य योजना तैयार होने से पहले अधिनियम के तहत दिल्ली के नियोजित विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने में कोई बाधा नहीं थी। [812ई]

पटना इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम श्रीमती लक्ष्मी देवी और अन्य [1963] पूरक. 2 एससीआर 812 का उल्लेख किया गया।

दूसरे शब्दों में, यह तथ्य कि स्थानीय प्राधिकरण की स्वीकृति या मंजूरी से विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य क्षेत्र में वास्तविक विकास की अनुमति है, केन्द्रीय सरकार को अधिनियमों के तहत योजनाबद्ध विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने से नहीं रोकता है। धारा 12 केवल योजनाबद्ध विकास से संबंधित है। इसका संपत्ति के अधिग्रहण से कोई लेना-देना नहीं है; अधिग्रहण आम तौर पर विकास से पहले होता है। विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य क्षेत्र में नियोजित विकास के लिए, केवल स्थानीय प्राधिकरण की मंजूरी या स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है जैसा कि धारा 12 (3) में प्रदान किया गया है। केंद्र सरकार अधिनियम के तहत किसी भी संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती है और स्थानीय प्राधिकरण की मंजूरी प्राप्त करने के बाद इसे विकसित कर सकती है। जैसा कि पहले ही माना गया है कि अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं को लापरवाही और स्वीकृति के आधार पर धारा 4 के तहत अधिसूचना की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह दलील कि दिल्ली के मुख्य आयुक्त के पास अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करके अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि दिल्ली विकास अधिनियम की धारा 15 यह शक्ति केवल केंद्र सरकार को देती है, प्राथमिक रूप से अधिसूचना की वैधता से संबंधित है। यहां तक कि यह मानते हुए कि मुख्य आयुक्त को अधिकृत नहीं किया गया था, चूंकि अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं को उनकी लापरवाही और स्वीकृति द्वारा अधिसूचना पर सवाल उठाने से रोक दिया गया है, दलील को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। [812 एफ-एच; 813 ए-बी]

(v) यह दलील कि अधिनियम के भाग VII के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है, को भी खारिज किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष देने में सही किया कि अधिग्रहण कंपनी के लिए नहीं था। केवल इस तथ्य से कि अधिग्रहण के बाद सरकार ने विकास के लिए अधिग्रहित संपत्ति का एक हिस्सा सहकारी आवास समितियों को सौंपने का प्रस्ताव रखा, या वास्तव में सौंप दिया, अधिग्रहण को कंपनी के लिए नहीं बनाया जा सकता और इसलिए, अधिनियम का भाग VII लागू नहीं हुआ। [813सी-ई]

मौलिक अधिकारिता: 1972 की रिट याचिका सं. 362 और 363।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत याचिकाएं।

1972 की *सिविल अपील सं.* 107, 968 से 971 और 1185।

दिल्ली उच्च न्यायालय के क्रमशः ले.पे.अ. सं. 172, 177, 151, 170, 171 और 152, 1971 के दिनांक 24 सितम्बर, 1971 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपीलें।

सिविल अपील सं. 1972 का 1168।

ले.पे.अ. सं. 94/1971 में दिल्ली उच्च न्यायालय के दिनांक 17 अप्रैल, 1971 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

ए.के. सेन, (रि.या.सं. 362/72 में), एल.एम सिंघवी (रि.या.सं. 363/72 और सि.अ.सं. 968/72 में), एस. के. ढींगरा (सि.अ.सं. 968/72 में) और बी. दत्ता, याचिकाकर्ताओं (रि.या. में) और अपीलकर्ताओं (सि.अ. में) के लिए

एल. एन. सिन्हा, भारत के महाधिवक्ता, एस.एन. प्रसाद (रि.या. 1972 के अपीलीय न्यायाधिकरण सं. 363/72 और सि.अ.सं. 968 में) और आर.एन. सच्चि, प्रत्यर्थागण सं. 1-3 (1972 के अपीलीय न्यायाधिकरण सं. 968, 970, 107/72 और सि.अ.सं. 362-363 में) और अन्य अपीलों में प्रत्यर्थागण के लिए।

प्रत्यर्थी सं.4 (सि.अ.सं. 107 व 968/72 में) सरदार बहादुर सहरया और विष्णु बहादुर सहरया।

के.के. सिन्हा, एस.के. सिन्हा और बी.बी. सिन्हा, प्रत्यर्थी सं. 5, 6, 8 के लिए (सि.अ. सं.968/72 में)।

विनू भगत, प्रत्यर्थी सं. 4 के लिए (सि.अ. सं. 970/72 में)

अशोक ग्रोवर, प्रत्यर्थी सं. 5 के लिए (सि.अ. सं. 107/72 में)।

एस. के. ढोलकिया, प्रत्यर्थी सं. 6 के लिए (सि.अ.सं 107/72 में)।

टी. वी. एस. नरसिम्हाचारी, प्रत्यर्थी सं.7 के लिए (सि.अ.सं 107/72 में)।

हस्तक्षेप करने वालों के लिए एल. एम. सिंघवी और एस. के. ढींगरा।

न्यायालय का निर्णय न्या. श्री मैथ्यू के द्वारा दिया गया था

ये रिट याचिकाएं और सिविल अपीलें सामान्य प्रश्न उठाती हैं और इसलिए इन्हें एक सामान्य निर्णय द्वारा निपटाया जाता है। सिविल अपीलें दिल्ली उच्च न्यायालय के उस निर्णय से उत्पन्न हुई हैं जिसमें अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था जिसमें "दिल्ली के नियोजित विकास" के लिए भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी गई थी। रिट याचिकाओं में, समान कार्यवाही की वैधता को कुछ अतिरिक्त आधारों पर भी चुनौती दी जा रही है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम (जिसे आगे 'अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना 13 नवंबर, 1950 को जारी की गई थी, जिसमें कहा गया था कि सार्वजनिक उद्देश्य यानी दिल्ली के नियोजित

विकास के लिए 34,070 एकड़ भूमि की आवश्यकता है। 1959 से 1961 के बीच अधिनियम की धा. 5क के तहत लगभग छह हजार आपत्तियां दर्ज की गईं। आपत्तियों का निपटारा कर दिया गया। 18 मार्च, 1966 को अधिनियम की धा. 6 के तहत क्षेत्र के एक हिस्से के संबंध में घोषणा प्रकाशित की गई। इसके बाद, 1970 में, अधिनियम की धा. 9 (1) के तहत नोटिस जारी किए गए, जिसमें अपीलकर्ताओं को मुआवजे के आकलन पर अपनी आपत्तियां, यदि कोई हो, बताने की आवश्यकता थी। इसके बाद अपीलकर्ताओं ने निम्नलिखित आधारों पर दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अधिग्रहण की कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी: (1) कि अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि कंपनियों के लिए था और इसलिए अधिनियम के भाग VII के प्रावधानों का अनुपालन किया जाना चाहिए था, (2) चूंकि देय मुआवजे का कोई भी हिस्सा सरकारी खजाने से नहीं आया था, इसलिए अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं था और (3) कि अधिग्रहण की कार्यवाही ने अनुच्छेद 19 (1) (च) के तहत अपीलकर्ताओं के मौलिक अधिकार का हनन किया क्योंकि धा. 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन और अधिनियम की धा. 9 के तहत नोटिस जारी करने के बीच अनुचित देरी हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं को धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख के बाद संपत्ति के मूल्य में वृद्धि के लाभ से वंचित किया गया था। उच्च न्यायालय ने दलीलों को नकार दिया और रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया।

अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से हमारे समक्ष प्रस्तुत मुख्य तर्क यह थे कि धा. 4 के तहत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट सार्वजनिक उद्देश्य, अर्थात्, 'दिल्ली का नियोजित विकास' अस्पष्ट था क्योंकि अधिसूचना की तिथि तक न तो कोई मुख्य योजना था और न ही कोई क्षेत्रीय योजना अस्तित्व में थी और चूंकि अधिसूचना में निर्दिष्ट उद्देश्य अस्पष्ट था, इसलिए अपीलकर्ता अधिनियम की धा. 5क के तहत अपने अधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में असमर्थ थे और चूंकि धा. 4 के तहत अधिसूचना 1959 में प्रकाशित हुई थी, इसलिए दिया गया मुआवजा उस तिथि को संपत्ति के बाजार मूल्य के संदर्भ में पूरी तरह से अपर्याप्त था, जिस तिथि को अपीलकर्ताओं को संपत्ति के कब्जे से वंचित किया जाना था। दूसरे शब्दों में, तर्क यह था कि चूंकि अधिग्रहण की कार्यवाही को अंतिम रूप देने में अत्यधिक देरी हुई थी, इसलिए अपीलकर्ता धा. 4 के

तहत अधिसूचना की तिथि और संपत्ति के कब्जे में लेने की तिथि के बीच संपत्ति के मूल्य में वृद्धि के लाभ से वंचित रह गए। इस तर्क के साथ यह दलील भी जुड़ी थी कि अधिनियम की धा.23 के प्रावधान, जो यह निर्धारित करते हैं कि मुआवजे का निर्धारण धारा 4 के तहत अधिसूचना की तिथि को भूमि के बाजार मूल्य के संदर्भ में किया जाना चाहिए, अनुच्छेद 19 (1) (च) के तहत संपत्ति रखने और निपटाने के अपीलकर्ताओं के मौलिक अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध था। आगे यह तर्क दिया गया कि चूंकि संपत्ति का अधिग्रहण दिल्ली के नियोजित विकास के उद्देश्य से किया गया था, इसलिए धा. 4 के तहत अधिसूचना जारी करने के लिए सक्षम एकमात्र प्राधिकारी दिल्ली विकास अधिनियम की धा. 15 के तहत केंद्र सरकार थी और चूंकि कार्यवाही दिल्ली के मुख्य आयुक्त द्वारा शुरू की गई थी, इसलिए कार्यवाही शुरू से ही अवैध थी। तर्क यह था कि, चूंकि अधिग्रहण दिल्ली के नियोजित विकास के लिए किया गया था, इसलिए इसे केवल दिल्ली विकास अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही किया जा सकता था, और उस अधिनियम की धा.15 के तहत, यह केवल केंद्र सरकार ही थी जो यह राय बनाने के बाद कि दिल्ली के नियोजित विकास के लिए भूमि का अधिग्रहण आवश्यक था, धा. 4 के तहत अधिसूचना जारी कर सकती थी और चूंकि अधिसूचना दिल्ली के मुख्य आयुक्त द्वारा जारी की गई थी, इसलिए अधिसूचना शुरू से ही अमान्य थी। अंतिम तर्क यह था कि अधिग्रहण किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं था, बल्कि कंपनियों के लिए था, क्योंकि अधिग्रहित भूमि का बड़ा हिस्सा बिना किसी विकास के सहकारी आवास समितियों को आवंटित किया गया था, जो अधिनियम में 'कंपनी' शब्द की परिभाषा के भीतर कंपनियां थीं और और चूंकि अधिनियम के भाग VII के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए अधिग्रहण की कार्यवाही खराब थी।

1947 में पश्चिमी पाकिस्तान से विस्थापित लोगों के दिल्ली में आने से दिल्ली में आवास की समस्या और बढ़ गई। औद्योगिक और वाणिज्यिक गतिविधियों के विस्तार और विदेशी दूतावासों की स्थापना के साथ, दिल्ली ने रोजगार केंद्र के रूप में प्रचुर क्षमता हासिल की। जनसंख्या में परिणामी वृद्धि के साथ आवास सुविधाओं का पर्याप्त विस्तार नहीं हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में घरों का बेतरतीब और अनियोजित विकास हुआ; भूमि भी उचित मूल्य पर उपलब्ध नहीं थी क्योंकि विकास के लिए उपयुक्त उपलब्ध भूमि का

एक बड़ा हिस्सा निजी उद्यमियों के हाथों में चला गया था। सरकार ने घरों के बेतरतीब विकास को रोकने और घटिया निर्माण को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाना आवश्यक समझा। इसलिए, सरकार ने "दिल्ली के नियोजित विकास" के लिए एक योजना तैयार की। दिल्ली के नियोजित विकास की योजना को लागू करने के लिए सरकार ने 1959 में 34,070 एकड़ भूमि अधिग्रहित करने का निर्णय लिया और धारा 4 के तहत अधिसूचना प्रकाशित की, जिसमें सार्वजनिक उद्देश्य को "दिल्ली का नियोजित विकास" के रूप में निर्दिष्ट किया गया।

अधिनियम की धा. 4 में कहा गया है कि जब भी समुचित सरकार को ऐसा प्रतीत हो कि किसी इलाके में भूमि की किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आवश्यकता है या होने की संभावना है, तो उस प्रभाव की अधिसूचना सरकारी राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी और कलेक्टर उक्त इलाके में सुविधाजनक स्थानों पर ऐसी अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना देगा। इसलिए, धारा के अनुसार, अधिसूचना में केवल यह बताना आवश्यक है कि भूमि किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आवश्यक है। धा. 5 क के शब्दों से यह और स्पष्ट हो जाएगा कि धा. 4 के तहत अधिसूचना में केवल यह निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है कि भूमि किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आवश्यक है। अधिसूचना में विशेष सार्वजनिक उद्देश्य को निर्दिष्ट करने का एक कारण उस व्यक्ति को धारा 5क के तहत आपत्ति दर्ज करने में सक्षम बनाना है, जिसकी भूमि अर्जित की जानी है। जब तक किसी व्यक्ति को अधिग्रहण के विशिष्ट उद्देश्य के बारे में नहीं बताया जाता, तब तक उसके लिए धारा 5क के तहत अधिग्रहण के खिलाफ सार्थक आपत्ति दाखिल करना संभव नहीं हो सकता है। इस न्यायालय ने निर्धारित किया है कि अधिसूचना में उस विशेष सार्वजनिक उद्देश्य को निर्दिष्ट करना आवश्यक है जिसके लिए भूमि की आवश्यकता है या आवश्यकता होने की संभावना है, अन्यथा, धारा 4 की उप-धारा (2) में निर्दिष्ट मामलों को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है। *मुंशी सिंह और अन्य बनाम भारत संघ, आदि* में न्यायालय ने कहा:

“धारा 4 की उपधारा (2) से यह स्पष्ट है कि धा. 4 की उपधारा (1) में उल्लिखित लोक प्रयोजन को विशिष्टीकृत किया जाना है, क्योंकि जब तक ऐसा नहीं किया जाता है, उपधारा (2) में उल्लिखित विभिन्न विषयों को क्रियान्वित नहीं किया जा

सकता है और यदि धा. 4 (1) में उल्लिखित लोक प्रयोजन नियोजित विकास है, तो बिना किसी अतिरिक्त बात के यह समझना अत्यंत कठिन है कि उपधारा (2) में निर्धारित सभी विषयों को संबंधित अधिकारी द्वारा किस प्रकार क्रियान्वित किया जा सकता है।”

हमारा विचार है कि यह प्रश्न कि क्या धा. 4 के अधीन अधिसूचना में निर्दिष्ट उद्देश्य धारा 5-क के अधीन आपत्ति दायर करने के लिए पर्याप्त है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

अर्नोल्ड रॉड्रिक्स और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य मामले में, इस न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना जिसमें कहा गया था कि भूमि "औद्योगिक और आवासीय क्षेत्र के रूप में उक्त भूमि के विकास और उपयोग" के लिए आवश्यक थी, सार्वजनिक उद्देश्य का पर्याप्त विनिर्देश था।

विभिन्न व्यक्तियों के स्वामित्व वाले कई भूखंडों वाले भूमि के एक बड़े क्षेत्र के अधिग्रहण के मामले में, उद्देश्य का विवरण केवल पूरे क्षेत्र के अधिग्रहण के संदर्भ में ही हो सकता है। एक छोटे से क्षेत्र के अधिग्रहण के मामले के विपरीत, उस विशेष सार्वजनिक उद्देश्य को निर्दिष्ट करना व्यावहारिक रूप से कठिन हो सकता है जिसके लिए क्षेत्र में शामिल भूमि की प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता है।

इस समय यह मान लें कि अधिसूचना में सार्वजनिक उद्देश्य पर्याप्त रूप से निर्दिष्ट नहीं था, तो क्या अपीलकर्ताओं ने उचित समय पर इसकी शिकायत की? यदि अपीलकर्ताओं को वास्तव में सार्वजनिक उद्देश्य के गैर-निर्दिष्टीकरण से पूर्वाग्रह था, जिसके लिए वे भूखंडों में रुचि रखते थे, तो उन्हें उचित समय के भीतर उस आधार पर अधिसूचना को खारिज करने के लिए कदम उठाने चाहिए थे। 1966 में धा. 6 के तहत घोषणा प्रकाशित होने के बाद भी वे मामले में आगे नहीं बढ़े। उन्होंने 1970 में ही अपनी रिट याचिकाओं के साथ उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जब उन्हें धा. 9 के तहत नोटिस जारी किए गए। *मुंशी सिंह व अन्य बनाम भारत संघ* (पूर्वोक्त) में निर्णय के अंतिम भाग में, यह देखा गया:

“इस प्रकृति के मामलों में, उपरोक्त राहत प्रदान करते समय हम अपीलकर्ताओं की ओर से की गई लापरवाही को

ध्यान दिया गया होगा, लेकिन हम इस बात से संतुष्ट हैं कि जहां तक वर्तमान अपीलकर्ताओं का संबंध है, वे किसी भी स्तर पर लापरवाही, विलंब या मौन स्वीकृति के दोषी नहीं हैं।”

हमें नहीं लगता कि अपीलार्थी सतर्क थे।

इसके अलावा, अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क नहीं दिया कि चूंकि धा. 4 के तहत जारी अधिसूचना में सार्वजनिक उद्देश्य के विवरण निर्दिष्ट नहीं किए गए थे, इसलिए वे इस बात से पक्षपाती थे कि वे धा. 5क के तहत अपने अधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग नहीं कर सकते थे। चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिकाओं में अपीलकर्ताओं द्वारा दलील नहीं उठाई गई थी, इसलिए हमें नहीं लगता कि अपीलकर्ता इन अपीलों में दलील पर विचार करने के हकदार हैं।

न ही हम सोचते हैं कि रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं को 1966 में धा. 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन के बाद भी अधिसूचना की वैधता को चुनौती नहीं देने के उनके आचरण को देखते हुए यह दलील उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए। दो रिट याचिकाओं में से एक अपीलकर्ताओं द्वारा दायर की गई है। स्पष्ट रूप से कोई कारण नहीं था कि रिट याचिकाकर्ताओं को 1959 में जारी अधिसूचना की वैधता को चुनौती देने के लिए इस न्यायालय में आने के लिए 1972 तक इंतजार करना चाहिए था, इस आधार पर कि सार्वजनिक उद्देश्य के विवरण निर्दिष्ट नहीं किए गए थे। संपत्ति के अधिग्रहण के लिए कार्यवाही शुरू करने के लिए धारा 4 के तहत एक वैध अधिसूचना एक अनिवार्य शर्त है। इस आधार पर कि धा. 4 के तहत अधिसूचना और धा. 6 के तहत घोषणा वैध थी, सरकार को अधिग्रहण की कार्यवाही पूरी करने की अनुमति देना और फिर अधिसूचना पर उन आधारों पर हमला करना जो अधिसूचना प्रकाशित होने के समय उनके पास उपलब्ध थे, विलंबकारी रणनीति पर जोर देना होगा। रिट याचिकाएं याचिकाकर्ताओं की ओर से लापरवाही और देरी के आधार पर खारिज किए जाने योग्य हैं *(देखें तिलोकचंद मोतीचंद और अन्य बनाम एच.बी. मुंशी और अन्य; तथा रवींद्रनाथ बोस और अन्य बनाम भारत संघ व अन्य)*।

सरकार की ओर से दायर जवाबी शपथपत्र से यह स्पष्ट है कि अधिग्रहण की कार्यवाही पूरी होने के बाद सरकार ने भूमि का एक बड़ा

हिस्सा सहकारी आवास समितियों को आवंटित कर दिया है। इस स्तर पर अधिसूचना को खारिज करने से तीसरे पक्ष के अधिकारों का हनन होगा, जो न्यायालय के समक्ष नहीं हैं।

दूसरे तर्क के संबंध में कि अधिग्रहण की कार्यवाही को अंतिम रूप देने में अत्यधिक देरी हुई और अपीलकर्ताओं तथा रिट याचिकाकर्ताओं को उस भूमि के मूल्य में वृद्धि से वंचित किया गया जिसमें वे रुचि रखते थे, यह ध्यान देने योग्य है कि संपत्ति में रुचि रखने वाले व्यक्तियों द्वारा धारा 5क के तहत लगभग 6,000 आपत्तियां दायर की गई थीं। अधिग्रहण की कार्यवाही की वैधता को चुनौती देते हुए 1966 और 1967 में भी कई रिट याचिकाएं दायर की गई थीं। सरकार को मामले में आगे बढ़ने से पहले आपत्तियों और याचिकाओं के निपटारे का इंतजार करना पड़ा। विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंडपीठ दोनों का ही यह मानना था कि अधिग्रहण की कार्यवाही को पूरा करने में सरकार की ओर से कोई अत्यधिक देरी नहीं हुई। हम किसी अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए राजी नहीं हैं।

उपर्युक्त विवाद के साथ यह तर्क जुड़ा था कि अधिनियम की धा. 23 के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) के तहत अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं के संपत्ति रखने और उसका निपटान करने के मौलिक अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध लगाते हैं क्योंकि मुआवजा केवल धा. 4 के तहत अधिसूचना की तारीख को संपत्ति के मूल्य के संदर्भ में ही दिया जा सकता है, चाहे अधिग्रहण की कार्यवाही कितनी भी लंबी क्यों न चले, न कि संपत्ति के कब्जे में लेने के समय उसके बाजार मूल्य के संदर्भ में। यह प्रस्तुत किया गया था कि मुआवजे का भुगतान संपत्ति के मूल्य के संदर्भ में उस तारीख को किया जाना चाहिए जब संपत्ति का कब्जा लिया गया हो और धारा, जैसा कि यह निर्धारित करती है कि मुआवजा धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख को बाजार मूल्य के संदर्भ में तय किया जाना चाहिए, अनुच्छेद 19 (1) (च) के तहत नागरिक के मौलिक अधिकार को कम करता है। हम पाते हैं कि तर्क प्रेरक नहीं है। अनुच्छेद 31 (5) (क) प्रदान करता है:

“(5) खंड (2) में कुछ भी प्रभावित नहीं करेगा --

(क) किसी ऐसे कानून के अलावा किसी मौजूदा कानून के प्रावधान जिस पर खंड (6) के प्रावधान लागू होते हैं।”

भूमि अधिग्रहण अधिनियम संविधान-पूर्व अधिनियम है। इसलिए, इसके प्रावधानों को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे अनुच्छेद 31 (2) की आवश्यकता के अनुरूप नहीं हैं। अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं की शिकायत यह है कि उनकी संपत्तियां उन्हें धा. 4 के तहत अधिसूचना की तिथि पर भूमि के बाजार मूल्य के संदर्भ में गणना किए गए मुआवजे का भुगतान करके अधिग्रहित की गई थीं और इसलिए धा. 23 खराब है। यह, संक्षेप में, मुआवजे की पर्याप्तता के लिए एक चुनौती के अलावा और कुछ नहीं है। अनुच्छेद 31 (5) के कारण ऐसी चुनौती को रोक दिया गया है। दूसरे शब्दों में, अपीलकर्ता और रिट याचिकाकर्ता इस आधार पर धा. 23 की वैधता को चुनौती नहीं दे सकते कि इसके प्रावधानों के तहत देय मुआवजा किसी भी तरह से अपर्याप्त है, क्योंकि, ऐसी चुनौती अनुच्छेद 31 (5) के खिलाफ होगी।

उल्लेखनीय है कि भूमि अधिग्रहण संशोधन और विधिमान्यकरण अधिनियम, 1957 की धा.4 (3) में धा. 4 के तहत अधिसूचना की तारीख से मुआवजे के भुगतान की तारीख तक 3 वर्ष की समाप्ति के बाद बाजार मूल्य के 6 प्रतिशत की दर से ब्याज का भुगतान करने का प्रावधान है। अधिनियम की धारा 24 में प्रावधान है कि धा. 4 (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के बाद कलेक्टर की मंजूरी के बिना अर्जित, शुरू, बनाई या की गई भूमि पर कोई भी परिव्यय या सुधार या निपटान मुआवजा देने में न्यायालय द्वारा ध्यान में नहीं रखा जाएगा। इस प्रावधान का अर्थ है कि अधिसूचना की तारीख के बाद कलेक्टर की मंजूरी से किए गए किसी भी परिव्यय या सुधार को मुआवजा देने में ध्यान में रखा जाएगा।

आर. सी. कूपर बनाम भारत संघ में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की है कि यद्यपि संपत्ति के अधिग्रहण के लिए कानून को अनुच्छेद 19 (5) की कसौटी पर खरा उतरना होगा, फिर भी कानून को चुनौती सामान्यतः प्रक्रियात्मक अनुचितता के प्रश्न तक सीमित होगी। न्यायालय ने यह कहा:

“...जहां कानून सार्वजनिक उद्देश्य के लिए संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण का प्रावधान करता है, वहां यह माना जा सकता है कि अधिग्रहण या उससे संबंधित कानून आम जनता के हित में उचित प्रतिबंध लगाता है। यदि अनिवार्य अधिग्रहण को बनाए रखने के लिए कोई सार्वजनिक उद्देश्य नहीं है, तो कानून अनुच्छेद 31 (2) का उल्लंघन करता है। यदि अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिए है, तो प्रतिबंध की मूल तर्कसंगतता जिसमें वंचना भी शामिल है, जब तक कि अन्यथा स्थापित न हो, मान ली जाएगी, लेकिन प्रक्रियात्मक प्रावधानों की तर्कसंगतता की जांच को बाहर नहीं रखा जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी न्यायाधिकरण को संपत्ति के मालिक को सुने बिना, अनिवार्य रूप से अर्जित संपत्ति के लिए मुआवजा निर्धारित करने के लिए अधिनियम द्वारा अधिकृत किया जाता है, तो अधिनियम अनुच्छेद 19 (1) (च) के तहत खारिज किया जा सकता है।”

यह इस प्रकार है कि हालांकि अधिनियम की धा. 23 को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि यह अनुच्छेद 19 (1) (च) के तहत संपत्ति रखने और उसका निपटान करने के नागरिक के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करती है, चुनौती व्यावहारिक रूप से प्रक्रियात्मक तर्कसंगतता के प्रश्न तक सीमित होगी। लेकिन धा. 23 प्रक्रिया से नहीं निपटती है और इसलिए, किसी भी प्रक्रियात्मक अनुचितता से ग्रस्त नहीं हो सकती है। जब यह देखा जाता है कि धा. 23 को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि इसके प्रावधानों द्वारा प्रदान किया गया मुआवजा अनुच्छेद 31 (5) के प्रावधानों के मद्देनजर अपर्याप्त है, तो इस तर्क से कोई मतलब नहीं है कि इसे इसी कारण से चुनौती दी जा सकती है कि यह संपत्ति रखने और उसका निपटान करने के नागरिक के अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है।

यह तर्क दिया गया कि दिल्ली का नियोजित विकास दिल्ली विकास अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही हो सकता है, इसलिए अधिनियम की धा. 4 के अंतर्गत अधिसूचना दिल्ली के मुख्य आयुक्त द्वारा नहीं, बल्कि अधिनियम की धा. 15 के मद्देनजर केन्द्र सरकार द्वारा जारी की जानी चाहिए थी।

दिल्ली विकास अधिनियम, 1957 की धारा 12 में निम्नलिखित प्रावधान हैं :

"12(1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात यथाशीघ्र, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, दिल्ली में किसी क्षेत्र को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए विकास क्षेत्र घोषित कर सकेगी:

परन्तु ऐसी कोई घोषणा तब तक नहीं की जाएगी जब तक केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसी घोषणा के लिए प्रस्ताव प्राधिकरण और दिल्ली नगर निगम को, निर्देश प्राप्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर या केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुज्ञात अतिरिक्त अवधि के भीतर, उस पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए निर्दिष्ट नहीं कर दिया जाता है और इस प्रकार निर्दिष्ट या अनुज्ञात अवधि समाप्त नहीं हो जाती है।

(2) इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, प्राधिकरण किसी ऐसे क्षेत्र में भूमि का कोई विकास या कार्य नहीं करेगा जो विकास क्षेत्र नहीं है।

(3) इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात किसी भी क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति या निकाय (सरकार के किसी विभाग सहित) द्वारा भूमि का विकास तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक कि,-

- (i) जहां वह क्षेत्र विकास क्षेत्र है, वहां ऐसे विकास के लिए प्राधिकरण से इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार लिखित रूप में अनुमति प्राप्त कर ली गई है;
- (ii) जहां वह क्षेत्र विकास क्षेत्र से भिन्न कोई क्षेत्र है, वहां ऐसे विकास का अनुमोदन या मंजूरी संबंधित स्थानीय प्राधिकरण या उसके किसी अधिकारी या प्राधिकरण से, जो इस निमित्त सशक्त या प्राधिकृत है, लिखित रूप में, ऐसे प्राधिकरण को नियंत्रित करने वाली विधि द्वारा या उसके अधीन बनाए गए उपबंधों के अनुसार या जब तक ऐसे उपबंध नहीं किए जाते हैं, तब तक, इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पूर्व प्रवृत्त दिल्ली (भवन संक्रिया नियंत्रण) अधिनियम, 1955 के अधीन बनाए गए विकास की

अनुमति देने से संबंधित विनियमों के उपबंधों के अनुसार प्राप्त की जा सकेगी।

बशर्ते कि संबंधित स्थानीय प्राधिकरण धा. 53क के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसे क्षेत्र में लागू होने वाले विनियमों में संशोधन कर सकेगा।

(4) किसी भी क्षेत्र में किसी भी योजना के लागू होने के बाद उस क्षेत्र में तब तक कोई विकास कार्य नहीं किया जाएगा या चलाया नहीं जाएगा जब तक कि ऐसा विकास भी ऐसी योजनाओं के अनुरूप न हो।

(5) उपधारा (3) और उपधारा (4) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व सरकार के किसी विभाग या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा शुरू की गई किसी भूमि का विकास उस विभाग या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा उन उपधाराओं की अपेक्षाओं के अनुपालन के बिना पूरा किया जा सकेगा।

दिल्ली विकास अधिनियम, 1957 की धारा 15 में कहा गया है:

“15(1) यदि केन्द्रीय सरकार की राय में इस अधिनियम के अधीन विकास के प्रयोजन के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए कोई भूमि आवश्यक है तो केन्द्रीय सरकार भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के उपबंधों के अधीन ऐसी भूमि का अर्जन कर सकेगी।

(2) जहां केंद्र सरकार द्वारा किसी भूमि का अधिग्रहण किया गया है, वह सरकार, भूमि का कब्जा लेने के बाद, प्राधिकरण या किसी स्थानीय प्राधिकरण को भूमि हस्तांतरित कर सकती है, जिसके लिए प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा उस अधिनियम के तहत दिए गए मुआवजे और अधिग्रहण के संबंध में सरकार द्वारा किए गए शुल्क के भुगतान पर भूमि का अधिग्रहण किया गया है।”

अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जिस तारीख को धा. 4 के तहत अधिसूचना प्रकाशित हुई थी, उस दिन सरकार ने दिल्ली विकास अधिनियम की धा. 12 (1) के तहत दिल्ली में किसी भी क्षेत्र को विकास क्षेत्र घोषित नहीं किया था और न ही उस अधिनियम की धा. 7 के अनुसार कोई मुख्य योजना तैयार किया गया था और इसलिए दिल्ली के नियोजित

विकास के लिए संपत्ति का अधिग्रहण अवैध था। दिल्ली विकास अधिनियम की धारा 12 (3) के तहत, उस खंड में दिए गए प्रावधान को छोड़कर भूमि का कोई विकास नहीं किया जा सकता है। धारा 2 (घ) में कहा गया है: "विकास" अपनी व्याकरणिक विविधताओं के साथ इसका अर्थ है भूमि पर, ऊपर या नीचे भवन, इंजीनियरिंग, खनन या अन्य कार्यों को करना या किसी भी भवन या भूमि में किसी भी भौतिक परिवर्तन को करना जिसमें पुनः विकास शामिल है। धारा 2 (ङ) में कहा गया है कि "विकास क्षेत्र" का अर्थ धा.12 की उप-धारा (1) के तहत विकास क्षेत्र घोषित किया गया कोई भी क्षेत्र है।

दिल्ली के नियोजित विकास पर सरकार ने 1959 से पहले ही निर्णय ले लिया था, यानी दिल्ली विकास अधिनियम लागू होने से भी पहले। यह सच है कि अधिनियम के लागू होने के बाद दिल्ली विकास अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार दिल्ली का कोई योजनाबद्ध विकास नहीं हो सकता था, लेकिन मास्टर प्लान तैयार होने से पहले अधिनियम के तहत दिल्ली के नियोजित विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने में कोई बाधा नहीं थी (*पटना इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम श्रीमती लक्ष्मी देवी एवं अन्य* (1) में निर्णय देखें)। दूसरे शब्दों में, यह तथ्य कि स्थानीय प्राधिकारी की स्वीकृति या मंजूरी से विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य क्षेत्र में वास्तविक विकास की अनुमति है, केंद्र सरकार को अधिनियम के तहत नियोजित विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने से नहीं रोकता है। धारा 12 केवल नियोजित विकास से संबंधित है। इसका संपत्ति के अधिग्रहण से कोई लेना-देना नहीं है; अधिग्रहण आम तौर पर विकास से पहले होता है। विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य क्षेत्र में नियोजित विकास के लिए केवल धा. 12 (3) के अनुसार स्थानीय प्राधिकारी की स्वीकृति या मंजूरी प्राप्त करना आवश्यक है। केन्द्र सरकार अधिनियम के तहत किसी भी संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती है तथा स्थानीय प्राधिकरण की मंजूरी प्राप्त करने के बाद उसका विकास कर सकती है। हम इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते कि क्या धारा 15 के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण करने का अधिकार केन्द्र सरकार द्वारा दिल्ली के मुख्य आयुक्त को सौंपा गया था। हम पहले ही यह मान चुके हैं कि अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं को लापरवाही और मौन स्वीकृति के आधार पर धा. 4 के अंतर्गत अधिसूचना की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह तर्क कि दिल्ली के मुख्य आयुक्त

को अधिनियम की धा. 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करके अधिग्रहण की कार्यवाही आरंभ करने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि दिल्ली विकास अधिनियम की धा. 15 यह शक्ति केवल केन्द्र सरकार को देती है, प्राथमिक रूप से अधिसूचना की वैधता से संबंधित है। यह मान कर भी कि दिल्ली के मुख्य आयुक्त को केन्द्र सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धा. 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया था, चूंकि अपीलकर्ताओं और रिट याचिकाकर्ताओं को लापरवाही और मौन स्वीकृति के कारण अधिसूचना पर प्रश्न उठाने से रोका गया है, इसलिए इस तर्क को किसी भी स्थिति में नकारा जाना चाहिए और हम ऐसा करते हैं।

डॉ. सिंघवी ने तर्क दिया कि अधिग्रहण वास्तव में सहकारी आवास समितियों के लिए था, जो अधिनियम की धारा 3 (ड) में 'कंपनी' शब्द की परिभाषा के अंतर्गत कंपनियाँ हैं, और इसलिए, अधिनियम के भाग VII के प्रावधानों का अनुपालन किया जाना चाहिए था। विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंडपीठ दोनों का ही यह मत था कि अधिग्रहण 'कंपनी' के लिए नहीं था। हमें उनके मत से अलग होने का कोई कारण नहीं दिखता। केवल यह तथ्य कि अधिग्रहण के बाद सरकार ने विकास के लिए अधिग्रहित संपत्ति का एक हिस्सा सहकारी आवास समितियों को सौंपने का प्रस्ताव रखा, या वास्तव में सौंप दिया, अधिग्रहण को 'कंपनी' के लिए नहीं बनाता। न ही हम इस बात से संतुष्ट हैं कि इस तर्क में कोई दम है कि अधिग्रहण के लिए भुगतान किया जाने वाला मुआवजा सहकारी समितियों द्वारा भुगतान किए गए प्रतिफल से आया था। यहां रिट याचिकाओं में दायर जवाबी शपथपत्र में दिए गए कथनों के आलोक में यह मानना कठिन है कि अधिग्रहण के लिए धनराशि सहकारी समितियों ने ही उपलब्ध कराई थी। केवल इसलिए कि सरकार ने विकास के लिए संपत्ति का एक हिस्सा सहकारी समितियों को आवंटित कर दिया, इसका यह अर्थ नहीं है कि अधिग्रहण सहकारी समितियों के लिए था, और इसलिए अधिनियम का भाग VII लागू होता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि धा. 4 के तहत अधिसूचना और धा. 6 के तहत घोषणा की वैधता *उदय राम शर्मा और अन्य बनाम भारत संघ* में मुद्दा था और इस न्यायालय ने उनकी वैधता को बरकरार रखा था।

हम अपीलों और रिट याचिकाओं में कोई योग्यता नहीं देखते हैं।
इसलिए, उन्हें लागत के साथ खारिज कर दिया जाता है।

याचिकाएं खारिज कर दी गईं।

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Disclaimer: The translated judgment in vernacular language is meant for the restricted use of the litigant to understand it in his/her language and may not be used for any other purpose for all practical and official purposes, the English version of the judgment shall be authentic and shall hold the field for the purpose of execution and implementation.